ये मेरा घर ये फ़िल्मी घर

देबश्री मुखर्जी

हमें एक दिन की शूटिंग के लिए आलीशान-से दिखने वाले एक पुराने बँगले की ज़रूरत थी। ऐसे मकान की जिसमें पीछे की तरफ़ खुली जगह और एक गेट हो, एक टेरेस हो जहाँ खुले आसमान के साए में बाप और बेटे का मिलन-दृश्य फ़िल्माया जा सके। साथ ही हमें घर के अंदर एक बहुत बड़ी जगह की भी ज़रूरत थी ताकि वहाँ खोजबीन का एक छोटा-सा सीक्वेंस भी फ़िल्माया जा सके। यानी एक ऐसा घर जिसे देखकर पुराने ज़माने की रईसी का एहसास हो।

महीनों लगाकर कई विकल्प तलाशने की कोशिश की गयी। कुछ साधारण थे, कई जर्जर थे और कई अन्य बेहद महँगे थे। शूटिंग के तयशुदा कार्यक्रम से कुछ दिन पहले विवेक, परेशजी और हम सारे लोग जोगेश्वरी में एक बँगला देखने गए। बँगला बिल्कुल उपयुक्त था। लोहे का एक गेट, साफ़-सुथरा बग़ीचा, मोज़ेक किया फ़र्श और एक लंबा-चौड़ा गलियारा, आसमान को छूती छत और अनगिनत खिड़कियाँ ...।

पूरे बंबई में बांद्रा से लेकर मड आइलैंड तक निजी मकान फ़िल्मों की शूटिंग के लिए किराए पर दिए जाते हैं। यह एक बड़ा ही फ़ायदेमंद कारोबार है। बाज़ार की ज़रूरतों के मद्देनज़र काफ़ी लोगों ने अपने घरों के कुछ ख़ास हिस्सों का विशेष रूप से नवीनीकरण करवाया है। उन घरों की माँग ज़्यादा

होती है, जिनके बग़ीचे से समुन्दर साफ़-साफ़ दिखता है तथा जिनमें स्विमिंग पूल और घुमावदार सीढ़ियाँ होती हैं। गोरेगाँव के बँगले जैसे 'सन विला' और उसके बग़ल वाला 'मून विला' टीवी फ़िल्मों की शूटिंग के लिए स्थायी रूप से आरक्षित रहते हैं। अकसर बँगले के मालिक वहाँ नहीं रहते हैं। वे दूसरी जगह अपार्टमेंट्स में रहते हैं या फिर मकान के एक भाग में पर्दा डालकर रहते हैं।

आख़िरकार जिस घर में हमने शूटिंग की वह सन् 1950 का बना था। पहचान की गोपनीयता के बारे में आश्वस्त हो लेने के बाद घर की मालकिन श्रीमती पूर्णिमा मुझसे बात करने के लिए राज़ी हुईं। घर की बहू के तौर उन्होंने बँगले की पुरानी साख बरक़रार रखने और रोज़मर्रा के घरेलू कामों के निपटारे की ज़िम्मेदारी उठा ली थी। लिहाज़ा शूटिंग के कामों की देख-रेख भी उन्हीं के ज़िम्मे थी। वो एक बेहद शालीन महिला हैं। उन्होंने कॉमर्स से लेकर टेक्सटाइल डिज़ाइनिंग तक तरह-तरह के कोर्स कर रखे हैं। उनका बेटा अब अमेरिका में बस चुका है तथा वो अपने पति और सास के साथ रहती हैं। इस घर के रूप में उन्हें एक काम, या कहें कि एक प्रॉजेक्ट मिल गया है।

मौजूदा घर अड़तालीस साल पहले उनके पति के दादा ने बनवाया था। वे एक दौलतमंद गुजराती थे और उनका भवन-निर्माण का बहुत बड़ा व्यवसाय था। वो एक शाही इंसान थे। इस मकान का काम शुरू करने से पहले उन्होंने कारीगरों को ताजमहल होटल दिखाया था ताकि वहाँ की लाइटिंग, बाथरूम्स की फ़िटिंग्स, दीवारों के रंग जैसी चीज़ों को वे बख़ूबी समझ सकें।" उनके घर में रखे बर्मा टीक के फ़र्निचर्स बला की ख़ूबसूरत हैं जिनकी नक़ल कभी भी दिल्ली के पंचकुइयाँ रोड पर मिल जाएँगी। उनके हर कमरे में अलग तरह की रोशनी है। देखकर फ़िज़ूलख़र्ची का नमूना जान पड़ता है। डाइनिंग रूम, जहाँ हम बातचीत कर रहे थे - की छत अंडाकार है और उसके भीतरी भाग में नीली, हरी, लाल, नारंगी आदि रंगों की छोटी-छोटी पच्चीस रंग-बिरंगी बत्तियाँ हैं ...। इस रंगीन नज़ारे से आपको पचास के दशक की हिंदी फ़िल्मों की ख़ूबसूरत हीरोइनों के बेहतरीन बँगले याद आ जाएँगे। बच्चों ने कमरे में एक ट्यूब-लाइट लगा दिया है ताकि बिजली के भारी-भरकम बिल में बचत हो और कमरा भी थोड़ा सामान्य दिखे। इस ट्यूब-लाइट से कमरे में पर्याप्त रोशनी भी हो जाती है।

तेईस साल पहले वो एक नयी नवेली दुल्हन के रूप में इस बँगले में आयी थीं। सांता क्रूज़ के एक अपार्टमेंट से इस बँगले में आना उनके लिए वाक़ई एक अलग क़िस्म का अनुभव था। बँगले की हालत लगभग जर्जर हो चुकी थी। एंटीक फ़र्नीचर और सामान बिना इस्तेमाल किए ही बर्बाद हो रहे थे। उन्होंने इसकी पुरानी सुंदरता लौटाने की पूरी कोशिश की लेकिन उन्हें कामयाबी नहीं मिली। ये बँगला एक सफ़ेद हाथी है। मैंने जल्दी ही महसूस किया कि हमारी कमाई का बहुत बड़ा हिस्सा रख-रखाव पर ही ख़र्च हो जाता है। तो क्यों न कोई ऐसा ज़रिया तलाशा जाए जिससे बँगले की कमाई से ही इसका रख-रखाव हो जाए!" बड़े से हाते में खड़ी यह विशालकाय तीन मंज़िला इमारत, बग़ीचा, लॉन, कर्मचारियों के घर - इन सबकी बहुत निगरानी करनी पड़ती है। तीन लोगों को इसकी सारी खिड़कियाँ खोलने या बंद करने में पूरा आधा घंटा लग जाता है!

पाँच साल पहले, एक पारिवारिक मित्र के बहुत ज़ोर देने पर पति-पत्नी ने मिलकर बँगले को शूटिंग के लिए किराए पर देना तय किया। लेकिन वो इस बात पर अडिग थीं कि इसका इस्तेमाल महीने में सिर्फ़ पाँच दिन ही किया जाएगा और वह भी केवल टेलीविज़न धारावाहिकों और विज्ञापन फ़िल्मों की शूटिंग के लिए। फ़िल्म के लिए तो बिल्कुल नहीं। फ़िल्म का तो कोई सवाल ही नहीं उठता है। आर्ट फ़िल्मों को छोड़ दें तो ये कमर्शियल फ़िल्में अपनी मेकअप वैन्स और बड़ी-बड़ी लाइटों के साथ तमाशा खड़ा कर देती हैं ...।" यहाँ पहली शूटिंग एकता कपूर के एक सुपरनैचुरल थ्रिलर सीरियल 'मानो या ना मानो' की हुई थी। इसके बाद तो यह ख़बर कानोंकान फैल गयी। हमने कभी कोई प्रचार नहीं किया। हमारी जगह इतनी ज़्यादा मशहूर हो गयी कि अब मुझे लोगों को छाँटना पड़ता है। मैं इन रोज़-रोज़ के

धारावाहिकों के सख़्त ख़िलाफ़ हूँ क्योंकि ये अंतहीन चलते रहते हैं, और हाँ, मैं इन कमर्शियल फ़िल्मों के भी ख़िलाफ़ हूँ। इनकी कार्यशैली बहुत रफ़ और घटिया होती है जिससे न तो मैं निपट सकती हूँ और न ही मैं ऐसा चाहती हूँ। ऐड फ़िल्में सबसे अच्छी होती हैं। इनके क्रू (दल) बड़े प्रोफ़ेशनल होते हैं, और बड़े प्यार और सावधानी से हमारे घर का इस्तेमाल करते हैं।"

पहले दिन तो मैं बहुत ज़्यादा बेचैन थी। मैं अपने फ़र्नीचर और सभी शीशों को लेकर काफ़ी चिंतित थी। दीवार में कहीं कोई कील न ठुक जाए, यह भी मेरे ध्यान में था ...। अब वही सब लोग कहते हैं कि 'मैडम बहुत सख़्त है', लेकिन ऐसा इमेज प्रॉजेक्ट करना बहुत ज़रूरी होता है। मैं ये सब कुछ अपने घर के लिए कर रही हूँ और मैं अपनी चीज़ों की हिफ़ाज़त को लेकर बहुत चौकन्नी रहती हूँ। और तो और, मैं अपनी कलाकृतियों की पोज़िशनिंग और उनके ऐंगल को भी हमेशा चेक करती रहती हूँ! ... मैं इन ईपी (एग्ज़ीक्यूटिव प्रॉड्यूसरों) और प्रोडक्शन कंट्रोलरों से बात करने के लिए पूरी तरह तैयार नहीं थी, क्योंकि इनमें से ज़्यादातर पुरुष ही होते हैं। ये प्रोडक्शन वाले बहुत चतुर और स्मार्ट होते हैं। हमेशा आपसे बार्गनिंग (मोलभाव) करेंगे और इस फ़िराक़ में रहेंगे कि आपसे कुछ भी माँग लिया जाए। माँगने में ये लोग कभी नहीं शर्माएँगे।"

दूसरी तरफ़, मुझे डायरेक्टरों, उनकी पत्नियों और कलाकारों से बात करने में बड़ा मज़ा आता है। वे हमारी तरह सभ्य लोग होते हैं। कुछ पढ़े-लिखे डायरेक्टरों से मेरी कई बार बढ़िया बातचीत हुई है। जो व्यक्ति मुझे सबसे अच्छी तरह याद हैं वो हैं दुर्गा जसराज। 'मानो या ना मानो' में वो एक भूत का किरदार निभा रही थीं। उनके साथ हमारा दोस्ताना संबंध बन गया था। ठीक इस जगह (दायीं तरफ़ इशारा करती हैं) डाइनिंग टेबल पर वो मेरे बेटे के साथ टेबल टेनिस खेलती थीं, पूरे मेकअप में! वह भी एक डरावने भूत का! आप कल्पना कर सकते हैं ऐसे सीन के बारे में! वो इसे बहुत सामान्य रूप में लेती थीं और बहुत गर्मजोशी से मिलती थीं। लेकिन यह भी सच है कि कोई किसी के संपर्क में नहीं रहता। उनकी अपनी ज़िन्दगी होती है और हमारी अपनी।"

जो दूसरे लोकप्रिय सीरियल यहाँ फ़िल्माए जा रहे हैं वो हैं 'सीआईडी' और 'जस्सी'। यहाँ शूटिंग की इजाज़त हमें सिर्फ़ इसलिए मिल गयी क्योंकि हमने झूठ कहा कि 'जॉनी जॉनी येस पापा' बच्चों की फ़िल्म है। अन्य घरों की तरह इसका एक तय किराया है और साथ ही इसके अपने कुछ क़ायदे-क़ानून भी हैं। हर शिफ़्ट के लिए एकसमान किराया साढ़े सात हज़ार रुपए।

श्रीमती पूर्णिमा घर का सिर्फ़ एक हिस्सा (ड्रॉइंग रूम, तीन बेडरूम तथा दो बाथरूम) और बाहर के लॉन्स (पार्टियों के लिए) ही किराए पर देती हैं। इनमें से किसी भी कमरे को मेकअप रूम के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है। पीछे की तरफ़ चाय बनाने और कपड़ों पर इस्त्री करने की जगह है। अगर शूटिंग कुछ दिनों तक चलती है तो लाइट और स्टैंड रखने के लिए शेड/गराज भी हैं। घर में किसी

भी सामान का जमावड़ा लगाने नहीं दिया जाता है।

शूटिंग के लिए घर की किसी भी चीज़ का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। मतलब यह कि शूटिंग क्रू के आने से एक रात पहले ही सारी कलाकृतियाँ, सजावटी सामान, टेबल-क्लॉथ, गद्दे, क़ालीन वग़ैरह हटा दिए जाते हैं। सिर्फ़ फ़र्निचरों और पेंटिंग्स का इस्तेमाल किया जा सकता है। बिजली के लिए शूटिंग क्रू को या तो खुद अपना जनरेटर लाना पड़ता है या फिर हर शिफ़्ट में बिजली की होने वाली खपत का लेखा-जोखा रखने के लिए उन्हें मीटर लगाना पड़ता है।

हर शूटिंग के बाद चार-पाँच लोग दो-तीन घंटे में पूरे बँगले की सफ़ाई करते हैं। इधर-उधर बिखरे चाय के कपों और सिगरेट की टोंटियों तथा शूटिंग के बचे सामानों को खोज कर फेंका जाता है। पूर्णिमाजी कहती हैं, टीवी पर अपना घर देखना ज़ाहिर है बहुत अच्छा लगता है। लेकिन बाद में थोड़ी दिक़्क़त महसूस होने लगती है। हम इस घर में रहते हैं और सभी कमरों का इस्तेमाल करते हैं। हमारी निजी चीज़ें हर जगह फैली रहती हैं। शूटिंग के लिए उन चीज़ों को समेटना पड़ता है। ज़ाहिर है एक तरह से इससे हमारी प्राइवेसी का हनन होता है। मैं खुद को अभी भी दूसरों को भाड़े पर अपना घर और अपने सामानों को इस्तेमाल के लिए देने के कॉन्सेप्ट से संतुष्ट नहीं कर पायी हूँ, लेकिन ये सब मैं अपने घर के लिए करती हूँ ...।"

अनुवाद : अमर